खण्ड – 2 : प्रमुख विचारक – 1

इकाई – 1 : अरस्तू

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य कथन
2.1.1. प्रस्तावना
2.1.2. अरस्तू : व्यक्ति परिचय
  2.1.2.1. व्यक्तित्व
  2.1.2.2. कृतियाँ
2.1.3. अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त
  2.1.3.1. मुख्य स्थापना
  2.1.3.2. सैद्धान्तिक निष्कर्ष
  2.1.3.3. सैद्धान्तिक सीमाएँ
2.1.4. त्रासदी
  2.1.4.1. अर्थ एवं अभिप्राय
  2.1.4.2. त्रासदी के घटक
  2.1.4.3. त्रासदी की महत्त्व
2.1.5. अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त
  2.1.5.1. विरेचन का अर्थ
  2.1.5.2. विरेचन की व्याख्या
  2.1.5.3. विरेचन का स्वरूप, विश्लेषण और आनन्दानुभूति
2.1.6. सारांश
2.1.7. शब्दावली
2.1.8. उपयोगी ग्रन्थ सूची
2.1.9. सम्बन्धित प्रश्न

2.1.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र' पाठ्यचर्या के खण्ड-2 'प्रमुख विचारक-1' की पहली इकाई है जो कि अरस्तू पर केन्द्रित है। वस्तुतः पाश्चात्य साहित्य चिन्तन व दर्शन की एक सुविकसित परम्परा रही है जिसमें साहित्य की प्रकृति एवं स्वरूप पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ है तथा साहित्य के स्वरूप सम्बन्धी मानवीय, लौकिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई है। विदित है कि पाश्चात्य साहित्य चिन्तन का विकास यूनान से आरम्भ होकर रोम होता हुआ आधुनिक यूरोपीय भाषाओं तक पहुँचा है। सुप्रसिद्ध विचारक प्लेटो से ही पाश्चात्य साहित्य चिन्तन का श्रीगणेश माना जाता है। प्लेटो ने जहाँ एक ओर साहित्य में नैतिक प्रत्ययवादी परम्परा का प्रवर्तन किया है, वहीं दूसरी ओर अरस्तू ने भौतिकवादी तर्क पर आधारित परम्परा का। इस प्रकार पश्चिमी

साहित्यशास्त्र की परम्परा इन दोनों मौलिक चिन्तन के खण्डन-मण्डन के आधार को लेकर आगे बढ़ती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

2.1.0.1. अरस्तू के व्यक्तित्व को जान सकेंगे।
2.1.0.2. अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे।
2.1.0.3. त्रासदी की परिभाषा देते हुए उसके महत्त्व की विवेचना कर सकेंगे।
2.1.0.4. अरस्तू के विरेचन सिद्धान्त के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1.1. प्रस्तावना

साहित्य मानव जीवन की जटिलताओं को समग्रता में प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम है। रचनाकार व साहित्य विचारक समाज में रहते हुए अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता, अत: सम्बन्धित परिवेश से उसकी चिन्तन प्रक्रिया एवं व्यवहार अनिवार्यत: प्रभावित होती है । वस्तुतः साहित्य चिन्तन तथा समीक्षा के प्रतिमान कालक्रमानुसार न केवल परिवर्तित हुए, अपितु अपनी पूर्ववर्ती चिन्तन परम्परा के गुणसूत्रों के साथ विकसित हुए हैं। पाश्चात्य काव्य चिन्तन की परम्परा एवं प्रवृत्ति को भी इसी सन्दर्भ में देखना न्यायोचित होगा। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हैसिओड, सोलन, पिंडार आदि की रचनाएँ आरम्भिक तौर पर एक ठोस समझ अवश्य विकसित करती हैं जहाँ काव्य, काव्य के हेतु तथा काव्य प्रयोजन सम्बन्धी मूलभूत मान्यताओं का उल्लेख मिलता है। हालाँकि, पश्चिमी जगत् में एक सुव्यवस्थित काव्यशास्त्रीय चिन्तन आरम्भ करने का श्रेय महान् यूनानी दार्शनिक प्लेटो को जाता है जिन्होंने आत्मवादी चिन्तन के फलस्वरूप कविता पर एक दार्शनिक के नजरिए से विचार किया है। कालान्तर में प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने कविता पर और अधिक वैज्ञानिक तथा तार्किक ढंग से विचार किया है। प्रस्तुत इकाई में हम अरस्तू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय प्राप्त करेंगे।

2.1.2. अरस्तू : व्यक्ति परिचय

प्रत्येक युग अपने साथ परिवर्तन का संदेश लेकर आता है। यह परिवर्तन विषय वस्तु तक ही सीमित नहीं रहता, उसकी ओर देखने वाली दृष्टि भी बदल जाती है। वस्तुत: वस्तु और दृष्टि की पारस्परिक गत्यात्मकता साहित्य तथा दर्शन के क्षेत्रों में भी विचारकों द्वारा स्वीकृत है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि सुप्रसिद्ध विचारक प्लेटो साहित्यशास्त्री न होकर मूलत: दार्शनिक थे। जहाँ एक ओर उनके दर्शन और राजनीति सम्बन्धी व्याख्याओं में काव्यशास्त्रीय मान्यताओं का उल्लेख मिलता है, वहीं दूसरी ओर उनके परम शिष्य अरस्तू का साहित्य चिन्तन साहित्य को विशुद्ध मानवीय उपलब्धियों के रूप में स्वीकार करता है । इस आलोक में आलोक में अरस्तू के साहित्यिक व्यक्तित्व का अध्ययन एवं विश्लेषण महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

.

2.1.2.1. व्यक्तित्व

महान् दार्शनिक व विचारक अरस्तू का जन्म 384 ई. पू. मकदूनिया के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। उनके पिता मकदूनिया के राजवैद्य थे। बचपन से ही अरस्तू अत्यन्त मेधावी थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्लेटो के विद्यालय में आरम्भ हुई और वहीं रहकर लगभग बीस वर्ष की आयु तक उन्होंने दर्शनशास्त्र का विस्तृत अध्ययन किया। कालान्तर में उन्होंने न केवल सिंकदर महान् के गुरू के रूप में ख्याति अर्जित की, अपितु एथेंस लौटकर स्वयं अपने विद्यापीठ की स्थापना की जहाँ अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

2.1.2.2. कृतियाँ

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अरस्तू का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने राजनीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन, अध्यात्म, प्राकृतिक विज्ञान आदि जैसे विभिन्न विषयों पर लगभग चार सौ उल्लेखनीय ग्रंथों की रचना की। हालाँकि, साहित्य सम्बन्धी चिन्तन का आधार उनके द्वारा लिखे दो ग्रन्थ हैं – पहला, काव्य शास्त्र (Poetics) और दूसरा, भाषणशास्त्र (Rhetarios)। 'काव्यशास्त्र' वास्तव में ग्रन्थ न होकर एक छोटी सी पुस्तिका है जिसमें सिद्धान्तों का सुव्यवस्थित विवेचन नहीं मिलता। वस्तुतः यह पुस्तिका अध्यापन के लिए तैयार की गई सामग्री का सम्पादित रूप प्रतीत होती है। 'भाषणशास्त्र' भाषण कला यानी वाकपटुता से सम्बन्धित है और इसी सन्दर्भ में इसके अन्तर्गत 'भाषा' और 'अभिव्यक्ति' पर विचार किया गया है।

2.1.3. अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त

अरस्तू से पहले प्लेटो ने 'अनुकरण' सिद्धान्त का विवेचन किया और यह मत स्थापित किया कि काव्य त्याज्य है, क्योंकि ईश्वर सत्य है, इसकी अनुकृति संसार है और संसार की अनुकृति ही 'काव्य' है। इस तरह काव्य अनुकरण का अनुकरण है। चूँकि, अरस्तू की दृष्टि वस्तुवादी है, इसलिए उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का मौलिक विवेचन किया है। साहित्यक चिन्तन व विवेचन के अनुक्रम में प्लेटो द्वारा कविता पर लगाए गए आक्षेपों का अरस्तू ने न केवल खण्डन किया है, अपितु कई मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया है। उल्लेखनीय है कि अरस्तू ने काव्य रचना के प्रेरक तत्त्वों, काव्य की प्रकृति, संरचना, प्रकार्य और प्रभाव पर व्यापक ढंग से चिन्तन-मनन किया है। और, अपने साहित्यिक चिन्तन में उन्होंने काव्य की महत्ता को पुन:स्थापित करने पर बल दिया है।

2.1.3.1. मुख्य स्थापना

अरस्तू के अनुसार 'कविता सामान्यतः मानवीय प्रकृति की दो सहज प्रवृत्तियों से उद्भूत हुई जान पड़ती है। इनमें से एक है – अनुकरण की प्रवृत्ति। कला प्रकृति का अनुकरण करती है। इस आलोक में यह जानना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि अरस्तू ने 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया है, क्योंकि इसकी व्याख्या उनके टीकाकार अपने-अपने ढंग से करते हैं। उदाहरण के लिए प्रो॰ ब्रूचर की मान्यता है कि

अरस्तू के द्वारा प्रयुक्त 'अनुकरण' का अभिप्राय सादृश्य विधान के द्वारा मूल वस्तु का पुनराख्यान है। दूसरी ओर प्रो॰ मरे जैसे टीकाकार ने स्पष्ट किया कि अरस्तू की दृष्टि में अनुकरण का अर्थ सर्जना का अभाव नहीं, अपितु पुनर्सजना है।

वस्तुतः अरस्तू ने काव्य को सौन्दर्यवादी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। नि:संदेह, यहाँ उनका बल कविता को एक मायने में दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र व नीतिशास्त्र के बन्धन से मुक्ति पर है। चूँकि, अरस्तू हूबहू नकल को अनुकरण नहीं मानते हैं, इसलिए प्रकृति से उनका आशय जगत् के बाह्य गोचर रूप के साथ साथ उसके आन्तरिक रूप से भी है। प्रकृति के अनेक दोष और अभाव भी अनुकृति की प्रक्रिया से कला के माध्यम से पूरे किए जाते हैं। वस्तुत: कवि या कलाकार अपनी संवेदना ओर अनुभूति से अपूर्णता को पूर्णता प्रदान करता है और उसे आदर्श रूप देता है।

अथच्, अनुकरण सिद्धान्त के सन्दर्भ में इतिहासकार और कवि का वास्तविक भेद भी यहाँ स्वत: स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः इतिहासकार तो उसका वर्णन करता है जो घटित हो चुका है, लेकिन कवि उसका वर्णन करता है जो घटित हो सकता है। इसलिए काव्य की प्रकृति व स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक भव्य है। जैसा कि अरस्तू ने भी कहा है कि "अनुकृति वस्तु से प्राप्त आनन्द भी कम सार्वभौम नहीं है। अनुभव इसका प्रमाण है। जिन वस्तुओं के प्रत्यक्ष दर्शन से हमें दु:ख होता है, क्लेश होता है उन्हीं की यथावत प्रतिकृति को देखकर हम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं"। इस प्रकार काव्यास्वादन का रहस्य भी मनुष्य के अनुकरण की प्रवृत्ति में निहित है। और, कलाजन्य आनन्द भी अनुकृतिजन्य आनन्द ही है।

जैसा कि विदित है कि अरस्तू प्रकृति के दो भेद स्थापित करते हैं – पहला, बाह्य प्रकृति और दूसरा, मानव प्रकृति। ये दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं और एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करती हैं। इन दोनों के मिलान से पूर्ण सत्य के दर्शन हो जाते हैं। इसलिए अरस्तू बार-बार इस तथ्य पर जोर देते हैं कि प्रकृति की छाया उसके अनुकरण में रहती है, लेकिन वह कोरी प्रतिछाया नहीं है। यदि कविता भी केवल प्रकृति का दर्पण या प्रतिबिम्ब होती तो वह हमें उससे अधिक नहीं दे सकती जो कि प्रकृति देती है। जबकि वास्तविक तथ्य यह है कि हम कविता का आस्वादन इसलिए करते हैं कि वह हमें वह सौन्दर्य प्रदान करती है जो प्रकृति नहीं देती है। इस प्रकार कहना सही होगा कि अरस्तू काव्य में अनुकरण का वही आशय ग्रहण करते हैं जो आजकल हम कला या शिल्प का अभिप्राय ग्रहण करते हैं।

अरस्तू के अनुसार कलाकार तीन प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक का अनुकरण करता है। भौतिक जगत् में वस्तुओं के तीन प्रकार के ये रूप हैं – पूर्व रूप जैसी थी, वर्तमान रूप जैसी प्रतीत होती है तथा कलाकार द्वारा गृहीत अनुकरण रूप। अत: कलाकार इनमें से किसी एक का ही अनुकरण करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अरस्तू के काव्य का विषय प्रकृति के प्रतीयमान, सम्भाव्य तथा आदर्श रूप को मानता है। कवि को स्वतंत्रता है कि वह प्रकृति को उस रूप में चित्रित करे जैसे वह उसकी इन्द्रियों को प्रतीत होती है या फिर वह जैसी होनी चाहिए। कहना सही होगा कि ऐसी स्थिति में काव्य में निश्चय ही भावना या कल्पना का योगदान होगा तथा वह

नकल मात्र नहीं होगा। इस तरह अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त भावनामय तथा कल्पनामय अनुकरण स्वीकार करता है, शुद्ध प्रतिकृति को नहीं।

2.1.3.2. सैद्धान्तिक निष्कर्ष

उल्लेखनीय है कि अरस्तू ने अलग से, बिल्कुल स्वतंत्र, अनुकरण की अवधारणा की चर्चा नहीं की। फिर भी उनके काव्य सम्बन्धी चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि वे अनुकरण को यथावत नकल की बजाय सर्जनात्मक अभिक्रिया मानते थे जिसका सम्बन्ध केवल बाह्य सृष्टि से ही नहीं, बल्कि उसकी सर्जनात्मक प्रक्रियाओं से होता है। यही कारण है कि उनकी दृष्टि में अनुकरण के जरिए प्रस्तुत सत्य कोरे सतही या बाह्य सत्य से अधिक विस्तृत एवं व्यापक हो जाता है। इतना ही नहीं, अरस्तू के अनुसार अनुकृत वस्तु से प्राप्त आनन्द भी कम सार्वभौमिक नहीं होता। नि:संदेह, इस कथ्य में उनका अभिप्राय 'सहृदय' के आनन्द से ही प्रतीत होता है, परन्तु सहृदय को भी आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब कवि के हृदय में आनन्द भाव की अनुभूति हो। इसलिए अनुकरण में आत्माभिव्यंजन भी आवश्यक है। अस्तु, अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त के महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक निष्कर्षों को कतिपय बिन्दुओं के अन्तर्गत उल्लेख किया जा सकता है, यथा –

(1) अनुकरण के विषय जीवन अथवा प्रकृति का बहिरंग ही नहीं, बल्कि उसका अन्तरंग भी है।

(2) वस्तु के प्रत्यक्ष रूप की अपेक्षा उसका भावनात्मक तथा कल्पनात्मक रूप ही अधिक ग्राह्य है। इस प्रकार जीवन के अन्तर्बाह्य रूपों में से प्राय: अनुकरण का अन्तरंग विषय प्रधान होता है।

(3) अनुकरण के तीन रूप हैं – पहला, प्रतीयमान रूप (जैसा कि वह प्रतीत होता है), दूसरा, सम्भाव्य रूप (जैसा कि वह हो सकता है) तथा तीसरा, आदर्श रूप (जैसा कि वह होना चाहिए)। इन तीनों रूपों में अनुकर्ता की भावना और कल्पना का योगदान रहता है। अत: अनुकरण भावनात्मक व कल्पनात्मक, पुन:सर्जन का ही पर्याय है।

(4) आनन्द भाव की अनिवार्य उपस्थिति के कारण अनुकरण में आत्म तत्त्व का प्रकाशन निहित रहता है। अनुकरण के माध्यम से भयमूलक या त्रासमूलक वस्तुको भी इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे आनन्द की प्राप्ति हो।

(5) अरस्तू ने काव्य रूप को अनुकरणमूलक माना है। वैसे तो कवि कर्म के लिए अनुकरण का प्रयोग अरस्तू के पूर्व भी प्रचलन में था, लेकिन अरस्तू ने इस परम्परागत शब्द को विशेष महत्त्व व अर्थवत्ता प्रदान की है।

(6) अनुकरण की संकल्पना में भाव तत्त्व एवं उसमें सन्निहित आत्म तत्त्व का सद्भाव सुनिश्चित होने पर भी अनुकरण को विशुद्ध आत्माभिव्यंजक का पर्याय नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसमें वस्तु तत्त्व की प्रधानता भी अनिवार्य है।

2.1.3.3. सैद्धान्तिक सीमाएँ

अरस्तू का सिद्धान्त प्रतिपादन तत्युगीन परिवेशजनित है और उन्होंने अनुकरण सिद्धान्त को प्लेटो की अपेक्षा नवीन अर्थ प्रदान किए। इसमें 'शिवम्' की अपेक्षा 'सुन्दरम्' पर अधिक जोर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने अनुकरण को दार्शनिकों और नीतिशास्त्रियों के चंगुल से मुक्त किया। फिर भी उनकी स्थापना आलोचना से परे नहीं है। ध्यातव्य है कि उन्होंने कवि की निर्माण क्षमता पर तो पूरा बल दिया है, लेकिन वे मानव व्यवहार व जीवन के अनुभवों से जनित कवि की अन्त:चेतना को महत्त्व प्रदान नहीं करते हैं। जैसा कि डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है कि "अरस्तू का दृष्टिकोण अभावात्मक रहा है और त्रास और करुणा का विवेचन उसकी चरम सिद्धि रही है"। विवेचनार्थ, अरस्तू द्वारा प्रतिपादित अनुकरण सिद्धान्त की सीमाएँ निम्नलिखित हैं –

1) अरस्तू आत्म तत्त्व और कल्पना तत्त्व को मान्यता प्रदान करते हुए भी वस्तुतत्त्व के महत्त्व को बार-बार रेखांकित करते हैं। लेकिन, वे वस्तुपरक भाव तत्त्व को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं जो तर्कसंगत नहीं है।
2) विश्व का गीतिकाव्य इस सिद्धान्त की परिधि से बाहर है। क्योंकि, भाव गीति काव्यात्मा है जो किसी प्रेरणा के दबाव से एक साथ गीति के रूप में फूट पड़ता है।
3) बेनेदितो क्रोचे की मान्यता है कि अनुकरण कला सृजन में कोई महत्त्वपूर्ण चीज नहीं है। वे काव्यशास्त्रीय चिन्तन में सहजानुभूति की प्रक्रिया पर विशेष बल देते हुए अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त का तार्किक अनुशीलन करते हैं।
4) अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त की आलोचना प्राय: इस आधार पर भी की जाती है कि उन्होंने जो शब्द 'इमिटेशन' का 'मीमेसिस' चुना है, वह उपयुक्त नहीं है। क्योंकि, उनकी व्याख्या इस शब्द के 'अर्थ' की परिधि से बाहर है।
5) अरस्तू अपने सैद्धान्तिक विवेचन में आन्तरिक अनुभूतियों के अनुकरण की भी बात स्वीकार करते हैं, लेकिन आलोचकों का मानना है कि वास्तव में अनुकरण का इतना विस्तार सम्भव नहीं है।

समकालीन परिवेश में चूँकि काव्य के अन्तर्गत यथार्थवाद, आदर्शवाद, प्रगतिवाद, नवचेतनावाद आदि प्रवृत्तियों को अपनाया जाने लगा है, इसलिए अनुकरण का महत्त्व अपेक्षाकृत कम हो गया है। फिर भी अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त में काव्य विश्लेषण की आधारभूत क्षमताओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। क्योंकि, काव्य कला को विशुद्ध दार्शनिक, राजनैतिक तथा नीतिशास्त्र की दृष्टि से न देखकर अरस्तू ने सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से देखा और काव्य को कला के रूप में प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है।

2.1.4. त्रासदी

'त्रासदी' यूनानी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा रही है जिसका आरम्भ मद्य देवता दिओनिसिअस के सम्मान में होने वाले समारोह से माना जाता है। वस्तुतः इस समारोह में बकरे का मुखौटा पहनकर नृत्य-गान करने

की परम्परा रही है। थेसियस ने ईसा पूर्व छठी शताब्दी में इस नृत्य-गीत श्रृंखला के बीच-बीच में छंदोबद्ध भाषणों की योजना का उल्लेखनीय सूत्रपात किया और 'त्रासदी' का आरम्भ भी यहीं से माना जाता है। ज्ञातव्य है कि ईसा के पहले की पाँचवीं शताब्दी आते आते यूनान में 'त्रासदी' एक स्थापित विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। और, एस्खिलुस, सोफोक्ली और यूरीपाइदिस जैसे महान् नाटककार इस विधा की परम्परा को विकसित एवं समृद्ध कर रहे थे। वैसे तो उस समय यूनान में कामदी, महाकाव्य, गीतिकाव्य आदि विधाओं का भरपूर चलन रहा, लेकिन काव्यशास्त्रीय चिन्तन के आलोक में अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' के अन्तर्गत 'त्रासदी' को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

2.1.4.1. अर्थ एवं अभिप्राय

अरस्तू के अनुसार "किसी गम्भीर स्वत:पूर्ण सुनिश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति ही 'त्रासदी' है तथा यह समाख्यान रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है। इसका माध्यम नाटक के विभिन्न भागों के तद्रूप प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से युक्त अलंकृत भाषा होती है"। चूँकि, अरस्तू की दृष्टि वस्तुपरक थी, इसलिए वस्तुजगत् तथा इसमें घटने वाली घटनाओं के प्रति उनका स्वाभाविक झुकाव था तथा 'त्रासदी' विवेचन में भी कार्य व्यापार को प्रस्तुत करने वाले तत्त्व 'कथानक' पर उनका जोर अधिक है। विवेचनार्थ, अरस्तू के 'त्रासदी' परिभाषा के आधार पर 'त्रासदी' की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है, यथा –

(i) त्रासदी 'कार्य की अनुकृति' है।
(ii) इसके अन्तर्गत वर्णित कार्य स्वत:पूर्ण होता है, गम्भीर होता है। कार्य का आयाम, क्षेत्र तथा विस्तार सुनिश्चित होता है।
(iii) 'त्रासदी' वर्णनात्मक रूप में नहीं, अपितु कार्य व्यापार के रूप में प्रस्तुत की जाती है।
(iv) कार्य व्यापार की प्रधानता होते हुए भी इसका माध्यम भाषा होती है और वह भाषा नाटक के लिए उपयुक्त अलंकारों से युक्त होती है।
(v) इसमें करुणा और त्रास का उद्रेक होता है और इस उद्रेक के द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।

2.1.4.2. त्रासदी के घटक

अरस्तू के अनुसार 'त्रासदी' के छह घटक (कथानक, चरित्र, विचार, पद विन्यास, दृश्य विधान और गीत) हैं। त्रासदी के सभी घटक केवल पात्र या व्यक्ति का नहीं, अपितु उसके कार्य और जीवन का अनुकरण करते हैं।

1. कथानक : कथानक का सम्बन्ध विषय वस्तु या घटना विन्यास से होता है। अरस्तू के अनुसार त्रासदी का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक 'कथानक' है। चूँकि, त्रासदी कार्य की अनुकृति है, इसलिए कथानक उसी कार्य व्यापार को प्रस्तुत करता है। यह व्यक्ति चरित्र का नहीं, घटनायुक्त जीवन के कार्य व्यापार का, सुख-दु:खमय प्रसंगों का अंकन है। इतना ही नहीं, त्रासदी का प्रभाव कार्य व्यापार पर ही निर्भर करता है। यही कारण है कि 'त्रासदी' के

घटकों की विवेचना के अनुक्रम में कथानक के निहितार्थ अरस्तू ने कथानक के स्रोत (दंतकथा, कल्पना और इतिहास), कथानक के प्रकार (सरल कथानक और जटिल कथानक), नाटकीय युक्तियाँ (महान् त्रुटि, अभिज्ञान, स्थिति विपर्यय), कथानक का आयाम और कथानक की संरचना के अनिवार्य गुण (अन्विति, पूर्णता, सम्भाव्यता, सहज विकास, करुणा तथा त्रास की योजना) का विस्तार से विवेचन किया है।

2. चरित्र : अरस्तू की दृष्टि में कार्य व्यापार का निष्पादन चूँकि चरित्रों के द्वारा होता है, इसलिए कथानक के बाद चरित्र त्रासदी का दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है। उनकी मान्यता है कि त्रासदी के पात्रों का अपना खास व्यक्तित्व होता है, हालाँकि उनका चरित्र चित्रण समग्र कथ्य के अनुरूप अपेक्षित होता है। साथ ही उनके माध्यम से त्रासदी का नैतिक प्रतिपाद्य भी अभिव्यक्त होना अत्यावश्यक है। अरस्तू का चरित्रों के यथार्थ चित्रण पर भी पूरा जोर है। उनके अनुसार ऐतिहासिक पात्रों का जहाँ चित्रण हो, वहाँ वह उनके इतिहास प्रसिद्ध रूप से बहुत अलग नहीं होना चाहिए। साथ-ही-साथ अन्य चरित्रों के चित्रण में भी सम्भाव्यता का पूरा ध्यान रखा जाना भी अपेक्षित है।

गतिशील पात्रों के अंकन में परिवर्तन संगत व स्वाभाविक होना जरूरी है तथा उनमें दिखाए जाने वाले परिवर्तन उनकी मूल प्रकृति के अनुरूप होना चाहिए। अरस्तू की दृष्टि में नायक त्रासदी का केन्द्र होता है तथा त्रासदी के सभी घटनाओं तथा कार्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में नायक से ही होता है। वस्तुतः नायक ही नाटक की अन्विति का सूत्र होता है और उसी के माध्यम से त्रासदी में करुणा तथा त्रास के भाव प्रकट होते हैं। इसलिए अरस्तू के अनुसार नायक को कुलीन, अत्यन्त वैभवशाली, यशस्वी, समृद्ध तथा प्रभावशाली होना चाहिए ताकि उसका अपकर्ष बृहत्तर समाज को भी प्रभावित करे।

3. विचार : विचार के अन्तर्गत अरस्तू केवल बुद्धि तत्त्व ही नहीं, बल्कि भाव तत्त्व को भी समाहित करता है। बुद्धि के स्तर पर विचार जहाँ सामान्य सत्य की व्यंजना करने का माध्यम होता है, वहीं भाव के स्तर पर यह करुणा, त्रास, क्रोध आदि की व्यंजना करता है। इसके अन्तर्गत चिन्तन और तर्क भी अनिवार्यत: समाविष्ट हैं और इस सन्दर्भ में विचारों को व्यक्त करने वाली भाषा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी मानी जाती है। त्रासदी के महत्त्वपूर्ण घटकों में पदविन्यास की महत्ता की भी अरस्तू ने विस्तार से चर्चा की है।

4. पदविन्यास : अरस्तू के मतानुसार पदविन्यास का अभिप्राय शब्दों द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार त्रासदी के कथानक और चरित्र यथार्थ जगत् से उठाए जाकर भी यथार्थ की अपेक्षा कुछ खास होते हैं, उसी प्रकार उसकी भाषा मूलत: प्रचलित भाषा होते हुए भी विशिष्ट होती है ताकि वह त्रासदी के विचार तत्त्व में निहित सत्य को अभिव्यक्त कर सके। अरस्तू चूँकि त्रासदी के लिए छंदोबद्ध भाषा या पद्य को अधिक उपयुक्त मानते हैं, इसलिए वे अलंकृत भाषा की वकालत करते हैं। हालाँकि, उन्होंने गद्य का भी विरोध नहीं किया है।

5. दृश्य विधान : यदि चरित्रों के द्वारा त्रासदी के कार्य व्यवहार का संचालन होता है तो उसकी प्रस्तुति का माध्यम दृश्य विधान है। अरस्तू की प्रबल धारणा है कि रंगमंचीय साधनों के कुशल प्रयोग से त्रासदी के प्रभाव को सघन करने में भरपूर सहायता मिलती है। फिर भी वे दृश्य विधान को त्रासदी का अनिवार्य घटक नहीं मानते हैं।

6. गीत : लेकिन गीत को त्रासदी का अनिवार्य घटक स्वीकार करते हुए अरस्तू ने यह विचार व्यक्त किया है कि नाटक में वृंदगान का महत्त्व किसी पात्र से कम नहीं है, क्योंकि वह नाटक में आनन्द तथा गम्भीरता की सृष्टि करता है और उसके प्रभाव की वृद्धि करता है।

2.1.4.3. त्रासदी की महत्त्व

अरस्तू अपने साहित्य चिन्तन में त्रासदी पर अधिक 'फोकस' करते हैं। उनके अनुसार त्रासदी हमारे त्रासदायक मनोभावों को उद्वेलित कर उनका विरेचन कर देती है। वस्तुतः त्रासदी के अन्तर्गत करुणा तथा अन्य त्रासदायाक भावों को इतने भयावह, आतंककारी और तीव्र रूप में चित्रित किया जाता है कि वे हमारे हृदय में दबे हुए भावों को भी अभिप्रेरित कर देते हैं। साथ-ही-साथ त्रासदी के पात्रों के बहाने मानवीय मन में उद्वेग उभरकर शान्त हो जाते हैं।

चूँकि, त्रासदी का कथानक संक्षिप्त तथा सुगठित होता है, इसलिए उसका प्रभाव भी अधिक सघन होता है। त्रासदी के आलोक में यह कला का ही प्रभाव है कि दुःखद स्थिति भी हमारे आनन्द का कारण बन जाती है। इस कलात्मक प्रक्रिया को अरस्तू ने 'विरेचन' कहा है।

2.1.5. अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त

अनुकरण सिद्धान्त की भाँति अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त भी महान् विचारक प्लेटो द्वारा काव्य पर किए गए आक्षेप का प्रतिवाद रूप है। उल्लेखनीय है कि प्लेटो ने काव्य कला को आदर्श राज्य के लिए अनुपयोगी व महत्त्वहीन बताया है जिसका अरस्तू ने बहुत ही तार्किक ढंग से प्रतिवाद किया है। इस सन्दर्भ में विरेचन सिद्धान्त की स्थापना करते हुए अरस्तू काव्य के उद्देश्य एवं प्रभाव की समुचित प्रतिष्ठाकरते हैं।

2.1.5.1. विरेचन का अर्थ

यूनान की चिकित्सा पद्धति में 'विरेचन' का उल्लेख मिलता है। भारतीय चिकित्सा पद्धति में भी 'विरेचन' का महत्त्व है। चिकित्सीय सन्दर्भ में 'विरेचन' का अभिप्राय है उपयुक्त औषधि के द्वारा शरीर को विकारों या अस्वास्थ्यकर तत्त्वों से मुक्त करके राहत प्रदान करना। लेकिन काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले अरस्तू ने ही किया है। वैसे काव्यशास्त्रीय चिन्तन के आलोक में उन्होंने 'विरेचन' का लाक्षणिक अर्थ ही ग्रहण किया है और भावों के द्वारा मनोविकारों की शुद्धि के लिए बेहद उपयोगी एवं प्रभावी बताया है।

2.1.5.2. विरेचन की व्याख्या

विरेचन के सिद्धान्त की स्थापना करते हुए अरस्तू ने यह मत प्रकट किया है कि वास्तविक जीवन की करुणा और त्रास का निष्कासन 'विरेचन' के द्वारा किया जाता है। विवेचनार्थ, लाक्षणिकता के आधार पर परवर्ती टीकाकारों ने विरेचन की व्याख्या निम्नलिखित सन्दर्भों के अन्तर्गत करते हैं –

1. धर्मपरक व्याख्या : 'विरेचन' की धर्मपरक व्याख्या करते हुए प्रो॰ मरे ने कहा है कि वस्तुतः यूनान में वर्ष के आरम्भ में दिओन्युसस देवता के उत्सव की प्रथा का प्रचलन था जिसमें प्रार्थना के द्वारा पाप की शुद्धि की योजना थी। एक अन्य टीकाकार लिवी की दृष्टि में त्रासदी की अवधारणा यूनानी अन्धविश्वास पर आधारित है। उनकी मान्यता थी कि "ये उत्सव विपत्तियों का मूलोच्छेदन करते हैं"। अरस्तू ने भी यह भी स्वीकार किया है। हाल की स्थिति से उत्पन्न आवेग के शमन हेतु भी यूनान में उद्दाम संगीत का उपयोग किया जाता था जो पहले आवेगों की वृद्धि करता था और फिर उन्हें शान्त कर देता था। इसी से अरस्तू को 'विरेचन' की अभिप्रेरणा मिली।

2. नीतिपरक व्याख्या : वारनेज आदि जर्मन विचारकों ने अरस्तू द्वारा प्रयुक्त 'विरेचन' शब्द की नीतिपरक व्याख्या करते हुए इसे मनोविकारों की उत्तेजना के उपरान्त उद्वेग का शमन और उससे उत्पन्न मानसिक प्रसन्नता बताया है। उल्लेखनीय है कि त्रासदीजनित करुणा और त्रास के भाव दर्शकों के मन में इनके समान ही भाव उत्पन्न होते हैं, लेकिन ये भाव शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। इस तरह दर्शक नाटक के रूप में त्रासदी को देखकर अथवा काव्य रूप में पढ़कर शान्ति का सुखद अनुभव करने लगता है और उसके मन में करुणा और त्रास मनोवेगों का आतंक नहीं रह जाता है।

3. कलापरक व्याख्या : जर्मन कवि गेटे जैसे साहित्यकारों की दृष्टि में विरेचन सिद्धान्त के कलापरक व्याख्या की विशेष संयोजना मिलती है। इस आलोक में प्रो॰ ब्रूचर का मत है कि 'ट्रेजडी' का कर्तव्य कर्म केवल करुणा या त्रास के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम प्रस्तुत करना नहीं, अपितु इन्हें एक सुनिश्चित कलातमक परितोष प्रदान करना है। इनको कला के माध्यम से ढालकर परिष्कृत तथा स्पष्ट करना है। अत: पहले मानसिक सन्तुलन और फिर बाद में उसका कलात्मक परिष्कार ही 'विरेचन' का अभिप्राय है।

4. मानसिक व्याख्या : मानसिक व्याख्या के निहितार्थ वारनेज जैसे विद्वान का मानना है कि मनुष्य के मन में अनेक मनोविकार वासना के रूप में स्थित रहते हैं। हमें उनका मूलोच्देदन करने की बजाय संतुलित करना अधिक वांछनीय है। ध्यातव्य है कि करुणा और त्रास नामक मनोवेग मूलत: दु:खद होते हैं। 'ट्रेजडी' रंगमंच पर ऐसे दृश्य प्रस्तुत करती है जिसमें ये मनोवेग अतिरंजित रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। उन्हें देखकर ये भाग पहले तो उद्वेलित होते हैं और फिर उपशमित हो जाते हैं। प्रेक्षक त्रासदी को देखकर मानसिक शान्ति का सुखद अनुभव करता है, क्योंकि उसके मन में वासना के रूप में स्थित करुणा तथा त्रास आदि मनोवेगों का दंश नष्ट हो जाता है। अस्तु, विरेचन की सहज मानसिक व्याख्या है – मनोविकारों के उत्तेजना के बाद उद्वेग का शमन होता है और तज्जन्य मानसिक विशदता से भावात्मक रुग्णता दूर हो जाती है।

2.1.5.3. विरेचन का स्वरूप, विश्लेषण और आनन्दानुभूति

वस्तुत: विरेचन से अरस्तू का अभिप्राय मनोवेगों के किसी-न-किसी प्रकार के विरेचन से था। त्रासदी को देखने के बाद मनुष्य जिस मन:स्थिति में आता है, वह आवेगों के विरेचन का ही परिणाम है। जैसा कि अरस्तू ने कहा है कि त्रासदी करुणा और त्रास के उद्रेक द्वारा तीन कार्य सम्पन्न करती है – पहला, नवीन दृष्टि प्रदान करना, दूसरा कलास्वाद प्रदान करना तथा तीसरा, शान्ति प्रदान करना। इस प्रकार 'विरेचन' त्रासदी सुख प्रदान करने वाली प्रक्रिया है।

'विरेचन' की सैद्धान्तिक व्याख्या के आधार पर यह सहज ही अनुभूत है कि धार्मिक संगीत की चर्चा और मानसिक शुद्धि की बात करके अरस्तू ने उसके धार्मिक और मानसिक रूप को स्वत: स्वीकार किया है। सत्य का अंश निहित होने से कलापरक अर्थ भी निश्चयत: सर्वमान्य है। वैसे देखा जाए तो अरस्तू के विरेचन के मानसिक अर्थ का समर्थन मनोविज्ञान भी करता है। विरेचन के द्वारा मनोविकार का परिष्कार होता है। विरेचन के अनुसार त्रासदी की कटुता का दंश उपशमित हो जाता है, क्योंकि त्रासदी में 'त्रास' और 'करुणा' साथ साथ चलते हैं। हालाँकि, विरेचन की दो स्थितियाँ 'करुणा' और 'त्रास' में से त्रास की स्थिति विरेचन सिद्धान्त और व्यवहार से थोड़ी भिन्न है, क्योंकि व्यावहारिक जीवन में हम केवल अपनी विपत्तियों से ही पीड़ा अनुभव करते हैं, जबकि प्रेक्षक के रूप में हम पात्र की पीड़ा को देखकर सम्भावित पीड़ा से दु:खी हो उठते हैं। काव्यशास्त्रीय विवेचन में इसे सहानुभूति जनित कम्पन स्वीकार किया गया है जो भारतीय काव्य चिन्तन में 'साधारणीकरण' को स्पर्श करता है।

विवेचनार्थ, अरस्तू द्वारा प्रतिपादित विरेचन जिस त्रासदी को महत्त्व देता है, उसमें करुणा और त्रास दोनों की प्रमुखता है, प्रधानता है। यह त्रासद प्रभाव तथा भारतीय काव्य चिन्तन में करुण रस के आस्वाद वाले सिद्धान्त में पर्याप्त समानता भी है और विषमता भी है। त्रासदी में जहाँ करुणा और त्रास के कारण पीड़ा की अनुभूति का प्राधान्य है, वहीं करुण रस में शोक की प्रधानता है। उदाहरण के लिए 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार इष्ट-वियोग, विभव-नाश, वध-बन्धन तथा दु:खानुभूति आदि से उत्पन्न होने वाला अनुभव 'शोक' कहलाता है।

'विरेचन' की सैद्धान्तिक विवेचना के आलोक में पाश्चात्य काव्य चिन्तन और भारतीय काव्यशास्त्र में उपर्युक्त साम्य के होते हुए भी पर्याप्त वैषम्यता के दर्शन भी होते हैं। इनमें प्रथम वैषम्य तो यह है कि अरस्तू ने करुणा और त्रास को हमेशा एक युग्म के रूप में स्वीकार किया है, लेकिन भारतीय काव्यशास्त्र में करुण और भयानक रस मित्र रसों के रूप में स्वीकार किए जाते हैं, फिर भी ये दोनों अलग-अलग रस माने गए हैं। त्रासदी का प्रभाव जहाँ मिश्र भाव होता है, वहीं शोक अमिश्र भाव है। करुण रस में शोक के जो कारण गिनाए गए हैं, उनमें से अनेक ऐसे भी हैं जो त्रास उत्पन्न नहीं करते, यथा – मृत्यु। रस के आस्वाद का सिद्धान्त अतिशय उत्तेजना तथा मनोवेगों के शमन तथा तज्जन्य मन:शान्ति तक तो बिल्कुल समान्तर है, परन्तु विरेचन सिद्धान्त की सीमा तो यहीं तक है। स्मरणीय है कि भारतीय साहित्य चिन्तन की परम्परा में करुण रस उद्वेग का शमन मात्र न होकर उसका भोग भी है। भारतीय दर्शन के अनुसार आनन्द 'दु:ख का अभाव' मात्र नहीं है, अपितु वह 'आत्मा-भोग' है।

समवेतत: विरेचन सिद्धान्त का प्रतिपादन करके अरस्तू ने न केवल काव्य की महत्ता स्थापित की है, अपितु त्रासदी के प्रभाव को भी गौरवपूर्ण बनाया है। साथ-ही-साथ भारतीय रस चिन्तन से भी इसका बहुत साम्य परिलक्षित होता है।

2.1.6. सारांश

सारत: अरस्तू की स्थापनाओं व उसके अनुभववादी सभी पक्षों के बारे में निश्चित और निर्विकल्प रूप से टिप्पणी करना सरल नहीं है। उसका महत्त्व तो इस अर्थ में है कि उनकी उपलब्ध सामग्री पूर्ण न होने के बावजूद भी पश्चिमी काव्यशास्त्र के चिन्तन का आधारबिन्दु बनी। भौतिकवादी तर्क पर आधारित काव्यशास्त्रीय चिन्तन परम्पराओं का प्रवर्तन कर अरस्तू ने निःसन्देह पश्चिमी काव्यजगत् व साहित्य चिन्तन चिन्तन की परम्परा को बहुत परिपक्व और समृद्ध किया है।

2.1.7. शब्दावली

भावातिरेक	:	भावों की अत्याधिकता
प्रतीयमान	:	ध्वनि या व्यंग्य द्वारा अनुभूत
वस्तुपरक	:	वस्तुनिष्ठ
वस्तुवादी	:	अनुभववादी
आत्मवादी	:	विषयनिष्ठ
प्रत्यय	:	विचार

2.1.8. उपयोगी ग्रन्थ सूची

1. नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र (अनु. व संपा.), भारती भंडार, इलाहाबाद.
2. जैन, निर्मला, काव्य चिन्तन की पश्चिमी परम्परा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
3. गुप्त, शान्ति स्वरूप, पाश्चात्य आलोचना के काव्य सिद्धान्त, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली.
4. जैन, निर्मला, पाश्चात्य साहित्य चिन्तन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली.
5. श्रीवास्तव, अर्चना, भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली.

2.1.9. सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अनुकरण के बारे में अरस्तू की मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।
2. अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त की सीमाओं को स्पष्ट कीजिए।
3. त्रासदी से अरस्तू का क्या तात्पर्य है ?
4. त्रासदी के विभिन्न घटकों की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अरस्तू के अनुसार कथानक के महत्त्व और उसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. अरस्तू के 'विरेचन सिद्धान्त' की विस्तार से चर्चा कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अरस्तू के अनुसार काव्यात्मक अनुकरण जीवन के किस रूप से सम्बद्ध है ?
   (a) आन्तरिक रूप
   (b) बाह्य रूप
   (c) अन्तर्बाह्य रूप
   (d) इनमें से कोई नहीं

2. अरस्तू के अनुसार काव्य का चरम उत्कर्ष है ?
   (a) त्रासदी
   (b) धर्म
   (c) इतिहास
   (d) उपर्युक्त सभी

3. अरस्तू के अनुसार त्रासदी के कुल कितने घटक हैं ?
   (a) दो
   (b) चार
   (c) पाँच
   (d) छह

4. 'विरेचन' शब्द मूलत: किस विधा से सम्बन्धित है ?
   (a) दर्शनशास्त्र
   (b) भौतिकी
   (c) रसायनशास्त्र
   (d) चिकित्साशास्त्र

5. अरस्तू ने विरेचन का कौन सा अर्थ ग्रहण किया है ?
   (a) शाब्दिक
   (b) लाक्षणिक

(c) पर्यायवाची

(d) इनमें से कोई नहीं

उपयोगी वेबसाइट्स :

01. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
02. http://www.hindisamay.com/
03. http://hindinest.com/
04. http://www.dli.ernet.in/
05. http://www.archive.org

❖❖❖